अब तो सवाल पत्रकारों पर भी उठने लगे हैं

किले दरक रहे हैं। तनाव बढ़ रहा है। पहले तनाव टीवी की रिपोर्टों तक सीमित रहता था। फिर एंकरिंग में संपादकीय घोल देने तक आ पहुंचा। जब उतने में भी बात नहीं बनी तो ट्विटर, फेसबुक, ब्लॉग, अखबार, हैंगआउट – जिसकी जहां तक पहुंच है, वो वहां तक जा कर अपने पक्ष में माहौल बनाने की कोशिश करने लगा।

जब मठाधीशी टूटती है, तो वही होता है जो आज भारतीय टेलिविजन में हो रहा है। कभी सेंसरशिप के खिलाफ नारा लगाने वाले कथित पत्रकार, एक-दूसरे के खिलाफ तलवारें निकाल के तभी खड़े हुए हैं जब अपने अपने गढ़ बिखरते दिखने लगे हैं। क्योंकि उन्हें लगता था कि ये देश केवल वही और उतना ही सोचेगा और सोच सकता है, जितना वो चाहते और तय कर देते हैं।

लेकिन ये क्या? लोग तो किसी और की कही बातों पर भी ध्यान देने लगे। किसी और की कही बातों पर भी सोचने लगे। और किसी और की कही बातों को सुनने-समझने के बाद, जब उन्हें अहसास हुआ कि आज तक जो देखते-सुनते आए उसका कोई और पक्ष भी है, तो सवाल भी पूछने लगे।

बस। यही बुरा लग गया मठाधीशों को। हमसे कोई सवाल कैसे पूछ सकता है? हम अभिव्यक्ति की आजादी अपने लिए मांगते हैं, दूसरों के लिए थोड़े ही न। ब्लॉक करो सालों को। भक्त हैं। दलाल हैं। सांप्रदायिक हैं। राष्ट्रवादी हैं।

दुनिया भर में कत्ल-ए-आम मचा हुआ है। भारत छोड़ के हर मुल्क के पत्रकारों को पता है कि कौन मार रहा है, किसको मार रहा है, किस लिए मार रहा है। सिर्फ भारत का टीवी इस बात पे बहस करता है कि आतंकवाद का धर्म नहीं होता बजाए इसके कि आतंकवाद से उस धर्म को कैसे बचाया जाए।

'चंद भटके हुए नौजवानों' के जुमले की आड़ लेने वाले वही सारे पत्रकार, दादरी कांड के बाद पूरे हिंदू समाज को हत्यारा, आतंकवादी, क्रूर और भारत को असहिष्णु का सर्टिफिकेट देने में पल भर की देर नहीं लगाते। लेकिन किला तब दरकता है जब देश असहिष्णुता के नाम पे अवॉर्ड वापसी को ड्रामा मानता है – और इनटॉलरेंट होने की पत्रकारों और संपादकों की उपाधि कुबूल करने से इनकार कर देता है।

कश्मीर में पत्थर चलते हैं। पैलेट गन चलती है। हर बार की तरह कुछ पत्रकार अलगाववादियों के दफ्तरों तक जाते हैं। उनकी बाइट लाते हैं। और बता देते हैं कि कश्मीर तो आजादी चाहता है। बुरहान वानी की मां भले बेटे को जिहाद की भेंट चढ़ा कह रही हो, कुछ पत्रकार इसे सेना की ज्यादती साबित

करने में जुटे रहते हैं। लेकिन किले तब दरकते हैं जब गुरेज़ में रहने वाला महबूब बेग, टीवी कैमरे पर 'भारत माता की जय' का नारा लगा देता है, 'हिन्दुस्तान जिंदाबाद' कहता है और आजादी की जंग को बकवास करार देता है। क्योंकि देश उस समय उन पत्रकारों से पूछने लगता है कि कश्मीर क्या सिर्फ अलगाववादियों की गलियों में बसता है जनाब ?

गौरक्षा कथित लिबरल पत्रकारों के लिए सबसे बड़ा चुटकुलेबाजी का विषय है। बेशक गौरक्षा के नाम पर जो घटनाएं कई जगह घटी हैं, वो माफी के काबिल नहीं हैं। ऐसे तत्वों से कानून को सख्ती से निबटना चाहिए। लेकिन किले तब दरकते हैं जब लोग पूछने लगते हैं कि कुत्ता-रक्षा के लिए तो आपने जान की बाजी लगा दी थी। घोड़ा-रक्षा के लिए आप चौराहे पर घोड़े की मूर्ति लगा दिए जाने तक लड़े थे। गैय्या का क्या कुसूर है ? उसके लिए भी लड़िए न ! आप लड़ लेते उसके लिए तो शायद ये गली-गली गौरक्षा दल की दुकानें न चल पातीं। आपकी मां ने भी तो कभी चूल्हे से पहली रोटी गाय के लिए ही उतारी होगी ! चलिए उसके लिए न कीजिए, अपने अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक वाले फेवरेट गेम में इसी बात के लिए गाय को कानूनी हक दिला दीजिए कि देश का बहुसंख्यक समाज उसको पूजता है।

झगड़ा राष्ट्रवाद या सेकुलरिज्म का नहीं है। मसला किसी सरकार के पक्ष या सरकार के विरोध का भी नहीं है। दर्शकों और पाठकों को बेवकूफ बनाने के लिए उस पर राष्ट्रवाद बनाम सेकुलरवाद का मुलम्मा वैसे ही चढ़ाया गया, जैसे आज तक हर चीज़ पर चढ़ाया जाता रहा है। सेकुलरिज्म वाला थोड़ा कमजोर पड़ता दिखे तो दलितिज्म का चढ़ा दो। बाबा साहेब अंबेडकर जब मुंबई में सूटबूट पहन कर निकलते थे, तो जो टिप्पणियां उन पर की गईं, वो स्थिति आज है क्या ? और जो दलित उत्थान अभी तक हुआ है, उस तक आने के लिए इन टीवी पत्रकारों ने अपनी रिपोर्टों से कितने ऐसे आंदोलन खड़े किए जिससे दलितों की हालत बेहतर हुई हो ? सिवा इसके कि इन्होंने हमेशा दलित और सवर्ण समाज के बीच की खाई को गहरा ही किया। किले तब दरकने लगे जब लोगों ने पूछना शुरू कर दिया।कभी अखबार में हेडलाइन छापते हो क्या-ब्राह्मण युवक की मौत या क्षत्रिय युवक की मौत या बनिया युवक की मौत। अगर नहीं तो लूटपाट, चोरी चकारी, डकैती, हत्या, फिरौती में जा के जाति का एंगल क्यों तलाशते हो भाई ? तब आपकी तटस्थता कहां चली जाती है ?

निष्पक्षता और तटस्थता, दो परिस्थितियां हैं। आंख-नाक-कान बंद होने का ड्रामा कीजिए। अपनी पसंद के तथ्य (किसी भी एक तरफ के) अपनी च्वॉइस के कवर में लपेट कर दर्शक को दीजिए और तटस्थ बने रहिए। या फिर आंख-नाक-कान खुला रखिए और कहिए कि देख-सुन-सोच-समझ कर बता रहा हूं। जो सही है, उसके साथ ताल ठोक के खड़ा हूं, इसलिए मैं तटस्थ नहीं,निष्पक्ष हूं।

और पत्रकार निष्पक्ष हो या तटस्थ, ये जानने-समझने के लिए हमें किसी अमेरिकी या ब्रिटिश पत्रकार का उदाहरण नहीं चाहिए (BBC और CNN दोनों 'PERSPECTIVE' के लिए दुनिया भर में कुख्यात हैं, इसके हजारों उदाहरण हैं)। राजा राम मोहन राय, लाला लाजपत राय, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, गणेश शंकर विद्यार्थी ने पर्याप्त पत्रकारिता की है। भारतीयों को, भारतीय परिस्थिति में, भारत के हित की पत्रकारिता सिखाने के लिए वो काफी है।

(लेखक ज़ी न्यूज़ में वरिष्ठ पत्रकार हैं)

(साभार : रोहित सरदाना के फेसबुक पेज से)